सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक तत्व–धर्म और विज्ञान

डॉ० (श्रीमती) अखिलेश
असिस्टेंट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
जी०एस०एच० (पी०जी०) कॉलेज,
चान्दपुर (बिजनौर)
ईमेलः akhileshchauhan6699@gmail.com

सारांश

सामाजिक प्रगति (Social Progress), समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए अपरिहार्य है। सामाजिक प्रगति की शून्यता में मानवीय कल्याण संभव नहीं है। इस सामाजिक प्रगति की संकल्पना को पूरा करने में 'धर्म और विज्ञान' अन्योन्याश्रित भूमिकाएं निर्वहन कर आवश्यक मार्ग प्रशस्त करते हैं।

यदि हम सामाजिक संगठन के व्यवस्थात्मक प्रतिमान का गहन विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि 'धर्म' ने सदैव धर्म आधारित कर्म रूपी मनोदशा को व्यवहारिक एवं अपरिहार्य बनाये रखने पर जोर दिया। उदाहरण स्वरूप, समाज या परिवार का संगठनात्मक–व्यवहारिक स्वरूप तभी संभव है जब उसकी प्रत्येक निर्माणक इकाई अपनी विशेषता के साथ भूमिका एवं प्रकार्यों को सापेक्षिक रूप में निर्वहन करती रहे। 'प्रकार्य' अथवा 'भूमिका संपादन अभिप्रेरणा' में 'धर्म' 'केन्द्रीयबल' (Centripetal Force) के रूप में कार्य करता है, जबकि 'विज्ञान' प्रकृतिजन्य घटनाओं का तथ्यात्मक ज्ञान प्रस्तुत कर ज्ञानवृद्धि एवं चेतनात्मक स्वरूप को प्रकट करती है, जो समाज एवं व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सहज एवं सोच को तथ्यात्मक रूप से सरल बनाने में मदद करती है। इसलिए मेरा मानना है कि 'सामाजिक प्रगति' के लिए 'धर्म' (Dharma) और 'विज्ञान' (Science) दोनों ही अनिवार्य हैं। इनके अन्योन्याश्रित आत्मबल, कर्मप्रधान एवं तथ्यात्मक चेतना रूपी स्वरूपों से ही समसामयिक सामाजिक विकास संभव है। इतिहास इसका साक्षी है।

प्रस्तुत लेख पूर्णतः द्वैतीयक स्त्रोतों से संकलित मान्यताओं एवं सूचनाओं पर आधारित एक विचारात्मक प्रस्तुति है जिसमें 'धर्म' और 'विज्ञान' दोनों को सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक मानते हुए उनके पारस्परिक सहकारिता स्वरूप एवं भूमिका निर्वहन का विश्लेषण किया गया है।

मूल बिन्दु

सामाजिक प्रगति, सामाजिक ढांचा, बाध्यकारी भाव, समन्वयात्मक विज्ञान, प्रेरणात्मक स्पंदन, व्यवहारिक व्यवस्थाएं, अन्योन्याश्रित।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 25.02.2022
Approved: 14.03.2022

डॉ० (श्रीमती) अखिलेश

सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक तत्व–धर्म और विज्ञान

RJPP Oct.21-Mar.22,
Vol. XX, No. I,

pp.132-136
Article No. 17

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2022-vol-xx-no-1

प्रस्तावना

सामाजिक प्रगति', समाज की एक कालिक (Time Perspective) आवश्यकता है। 'देश–काल' और 'व्यक्ति के संदर्भ' में 'प्रगति' का अर्थ भिन्नता लिए हुए है। भौतिक उन्नति, आर्थिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति को भी समानार्थक (सामाजिक प्रगति) संज्ञा दी जाती रही है। इससे स्पष्ट होता है कि 'सामाजिक प्रगति' की अवधारणा 'काल' व 'देश' के साथ परिवर्तित होती रही है। **लेस्टर वार्ड** (Lester Ward) ने 'मानवीय सुखों में वृद्धि' को 'सामाजिक प्रगति' कहा। वहीं **हॉरनेल हार्ट** (Hornel Hart) ने 'सामाजिक ढांचे' (Social Structure) में परिवर्तन' को 'सामाजिक प्रगति' माना। जहां **श्री लूमले** (Lumley) ने 'इच्छित अथवा मान्यता प्राप्त दिशा' में परिवर्तन को 'सामाजिक प्रगति' की संज्ञा दी। वहीं **ए0जे0 टॉड** ने 'सम्पत्ति, स्वास्थ्य, जनसंख्या व्यवस्था, स्थायित्व और सामाजिक अवसरों' में वृद्धि को 'सामाजिक प्रगति' में शामिल किया है। इससे स्पष्ट है कि समाज हित में ''कल्याणकारी परिवर्तन'' ''सामाजिक प्रगति'' है।

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उक्त 'कल्याणकारी परिवर्तनों' को लाने के लिए क्या धर्म और विज्ञान दोनों पारस्परिक स्तर पर सहायक की भूमिका में होते हैं? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर प्राप्त करने के लिए 'धर्म' और 'विज्ञान' की सकारात्मक भूमिकाओं को समझना होगा।

प्रस्तुत लेख पूर्ण रूप से वैज्ञानिक पद्धति एवं सूचना प्राप्ति के द्वैतीयक स्रोतों से संकलित तथ्यों पर आधारित एक 'विचारात्मक' व 'विवेचनात्मक' लेख है। शोध पत्र की शब्द–सीमितता के कारण धर्म और विज्ञान से सम्बद्ध कुछ बिन्दुओं और घटनाक्रमों को ही 'संज्ञान' में लाया गया है।

उद्देश्य

प्रस्तुत लेख का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में धर्म और विज्ञान की अन्योन्याश्रित भूमिकाओं को समझना एवं विश्लेषित करना है।

शोध प्रश्न

क्या धर्म और विज्ञान ने सामाजिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में समन्वयात्मक एवं सकारात्मक भूमिका निर्वहन की है?

उपकल्पना

सामाजिक प्रगति के संदर्भ में 'धर्म और विज्ञान' दोनों ही अन्योन्याश्रित सापेक्षिक एवं सहायक की भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं।

विश्लेषण

सामान्य तौर पर धर्म और विज्ञान चेतनात्मक एवं पारिलौकिक सत्ता के प्रमुख निर्धारकों में से हैं। इनसे सम्बन्धित विचारधाराएं अन्वेशित एवं पोषित रूप में एक–दूसरे की सम्पूरक मानी जाती रही हैं। अर्थात धर्म और विज्ञान में अवधारणात्मक भिन्नता होते हुए भी सामाजिक प्रगति के लिए दोनों ही अपरिहार्य हैं और दोनों ही अधिकांशतः सकारात्मक भूमिका निर्वहन अभिकरण की स्थिति में होते हैं। किन्तु मतान्तर के कारण पारस्परिक तार्किक विवाद भी देखे गये हैं। शोधार्थिनी का मानना है कि धर्म और विज्ञान पारस्परिक संघर्ष एवं सहकारिता की भूमिका में नजर आते हैं। सामाजिक प्रगति के संदर्भ में दोनों की अनिवार्यता को जानने से पूर्व इनका अवधारणात्मक सुस्पष्टीकरण जरूरी है।

आर. कानापि ने लिखा है, ''व्यवस्थित ज्ञान (विशुद्ध ज्ञान) ही विज्ञान है। इसी प्रकार **जेम्स फ्रेजर** ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा कि, **''मैं धर्म को मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जो मानव और प्रकृति को जीवन का मार्ग दिखलाकर नियंत्रित एवं नियमित करती है।''**

''धर्म एक व्यापक संकल्पना है। **मनीशी 'कणाद'** ने वैशेषिक सूत्र में लिखा है, **''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धि सः धर्मः''** अर्थात लौकिक प्रगति और चेतनात्मक उत्कर्ष का समन्वय ही धर्म है। भारतीय वैदिक साहित्य में आयुर्वेद, धनुर्वेद, रसायनशास्त्र, अथर्ववेद, शिल्प कला, स्थापत्य कला, नीति दर्शन के साथ तत्व मीमांसा का दर्शन होता है। थेल्स, प्लेटो, अरस्तु, अरविन्दो आदि के 'दर्शन' विज्ञान रूपी ज्ञान से परिपूर्ण हैं।

उपलब्धियां

(1) भारतीय समाज 'धर्मप्राण समाज' कहा जाता है। इसके पीछे सामाजिक जीवन से सम्बद्ध धार्मिक चेतना रूपी व्यवहारिक व्यवस्थाएं हैं। हम सब जानते हैं कि भारतीय सामाजिक संगठन व व्यवस्था (Indian Social Organization & Structure) में चार वर्णों (बाद में जाति शब्द से सम्बोधित) चार आश्रमों व चार पुरुषार्थों का अपना योगदान एवं भूमिकाएं रही हैं। जहां जातिगत संरचना में उच्चता व निम्नता के साथ सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं पारस्परिक निर्भरता का समन्वयात्मक विज्ञान छिपा है वहीं चारो आश्रमों में व्यक्तिगत एवं सामाजिक सौहार्द तथा प्रगति के लिए आवश्यक मूल्य, कर्तव्यपरायणता और स्वसिद्धि (अन्तिम लक्ष्य) के भाव छिपे हैं। पुरुषार्थ व्यवस्था भी नैतिक मूल्यों के स्थापन आत्मसात करने के बाद भोग विलास की पूर्णता के साथ परमसत्य (ईश्वर) से निकटता का मार्ग प्रशस्त करती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक संरचना, संगठन व व्यवस्था मॉडल में वे सभी मूल्य व प्रेरणात्मक स्पंदन (Sentimental Stimulation) छिपे हैं जो सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं। इस 'सामाजिक मॉडल' में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के प्रेरणा रूपी बीज भी छिपे हैं जो निरन्तर हमें पारस्परिक संघर्श से दूर रहकर सदैव विकास करने व कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। भारतीय समाज के उक्त परम्परागत आधारों में निहित व्यवस्थाओं पर विज्ञान कोई तर्क नहीं देता। इसी आधार पर **हरबर्ट स्पेन्सर** ने समाज को एक सावयव (Society is an Organism) कहा है।

(2) भारतीय जाति संरचना में उच्चता–निम्नता के क्रम को व्यवसायिक आधार पर उचित ठहराते हुए उसे 'रक्त की शुद्धता और अशुद्धता' के साथ भी जोड़ा गया जिसे विज्ञान ने असत्य ठहराया। यहां विज्ञान की भूमिका एक सुधारात्मक सहकारी अभिकरण के रूप में स्पश्ट होती है जिसे सभी ने स्वीकार भी किया, किन्तु व्यावसायिक प्रारूप के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न की जानी वाली भूमिकाएं भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक एवं अनिवार्यता की श्रेणी में आती हैं। इनमें बाध्यकारी भाव (Constrain Sentements) छिपे हैं। उक्त निर्धारित भूमिकाओं के अभाव में सामाजिक सौहार्द, संगठन व सामाजिक व्यवस्था स्थापन की बात नहीं सोची जा सकती। उक्त जातिगत भूमिकाएं एक शक्ति या बल (Force) के रूप में कार्य करती हैं जिससे समाज संगठित व व्यवस्थित रहता है। इन भूमिकाओं में अंशतः बाध्यकारी सोच व खुलापन भी है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री वीरस्टीड ने लिखा है, ''जाति एक बंद वर्ग नहीं, अपितु इसमें खुलापन भी है। यह जातिगत भूमिका रूपी खुलापन सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता नजर आता है। विज्ञान का इस संदर्भ में कुछ कहता दिखाई नहीं देता।

(3) भारतीय 'धर्म–दर्शन' में कर्म (Karma) को सर्वोपरि रखा है। आपका **''कर्म ही धर्म''** है। गीता में यह भी कह दिया गया– **''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचनः''** अर्थात् **धर्मानुसार कर्म करना आपका अधिकार है, फल की चिन्ता न करें।** कर्म का फल अर्थात् धर्म के पालन का लाभ आपको अवश्य प्राप्त होगा। धर्म आधारित कर्म करने की प्रेरणा हमारे सभी शास्त्र, ग्रंथ एवं उपनिषद देते हैं। अधर्म आधारित कर्म आपको हानि ही पहुंचायेगा। महाभारत और रामायण में निहित कुछ घटनाक्रम अधर्म रूपी कर्म करने पर अधर्मी के विनाश की कहानी बखान करते हैं।

(4) इतिहास साक्षी है कि विदेशों में 'चर्च का साम्राज्य' रहा है जिसमें चर्च को सबकुछ मान लिया गया और कर्म रूपी धर्म को भुला दिया गया। समय के साथ इसमें बदलाव आया और 'कैथोलिक धर्म' के साथ

मार्टिन लूथर, किंग व **कोल्वे** आदि के प्रयासों से **'प्रोटेस्टेन्ट धर्म'** का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें ''कर्म ही पूजा है'' रूपी संकल्पना को पश्चिमी समाज ने स्वीकार किया गया और आगे चलकर इस संकल्पना ने 'पूंजीवादी व्यवस्था' को जन्म दिया। कहने का अभिप्रायः यही है कि भारतीय दर्शन में 'धर्म आधारित कर्म' को 'सामाजिक प्रगति' का आधार माना गया जिस पर चलकर भारत विश्वगुरू कहलाया। वहीं पश्चिमी समाज ने इसे बाद में स्वीकार किया प्रभावस्वरूप औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ और सामाजिक प्रगति की राह आसान हुई। आज पश्चिमी समाज 'कर्म रूपी धर्म' को अपनाकर 'सामाजिक प्रगति' एवं विकास के नित नये सौपान प्राप्त कर रहा है।

देखने में आता है कि पश्चिमी समाज में विकसित 'पूंजीवादी विचारधारा' के दौरान उत्पन्न वातावरण ने **कोपरनिकस, गैलीलियो** एवं **न्यूटन** जैसे वैज्ञानिकों को अपने वैज्ञानिक विचार रखने का हौंसला दिया। फलस्वरूप, अंधविश्वासों को परास्त कर विज्ञान व तकनीकी विकास के द्वारा **मानववाद, पूंजीवाद, राष्ट्रवाद, जनवाद** जैसी विचारधाराओं का विकास संभव हो पाया। ये सभी वाद रूपी उत्पाद 'सामाजिक प्रगति एवं विकास' के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये स्थितियां भी धर्म और विज्ञान के पारस्परिक समन्वय एवं समायोजनकारी स्वरूप को प्रकट करती हैं।

(5) भारतीय समाज आदिकाल से धर्मप्राण समाज रहा है। यहां की जीवनशैली पर भौतिकता हावी नहीं रही। यहां सनातनी परम्परा ने सदैव धर्म के लोक कल्याणकारी स्वरूप को अक्षुण्ण रखा गया। प्राचीन शिक्षण संस्थानों में युद्ध, शिल्प, गणित, रसायन क्षेत्र में अनुसंधानपरक कार्यक्रम किये जाते रहे। महान शासक अशोक का विशाल **''अशोक स्तम्भ''** तकनीकी उच्चता एवं धार्मिक समन्वय का मिश्रित स्वरूप प्रकट करता है। किन्तु समय परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'अशोक स्तम्भ' समन्वित स्वरूप बिखरता गया, जिसके कारण 'धर्म का मूलरूप' और तकनीकी विज्ञान से उसके सम्बन्धों का 'अन्योन्याश्रित स्वरूप' (Interdepended Form) निखरकर सामने नहीं आ सका।

(6) विज्ञान ने प्राकृतिक रहस्यों को उजागर कर मानवीय ज्ञान में वृद्धि कर प्रकृतिजन्य एवं मानव जन्य अनेक समस्याओं एवं रोगों से निजात दिलायी है किन्तु यह कहना भी तथ्यात्मक है कि विज्ञान ने अनेक मानवीय समस्याओं को भी जन्म दिया है। पूर्व में प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध, वैश्विक परमाणु हथियारों की बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा कोरोना–19 महामारी इसके प्रामाणिक उदाहरण है। वर्तमान में इस महामारी से निजात दिलाने में वैज्ञानिक तकनीकी व चिकित्सीय प्रयासों के साथ धर्म आधारित मानवतावाद जैसे मूल्यों को व्यावहारिक बनाकर समस्या समाधान के प्रयास जारी हैं। इससे भी सामाजिक प्रगति हेतु आवश्यक विज्ञान और धार्मिक मूल्यों की समन्वयता को समझा जा सकता है। इससे उपकल्पना की पुष्टि हो रही है। एक वैज्ञानिक में धर्म, मजहब और उसकी वैज्ञानिक सोच साथ–साथ ही रहते हैं जो उसकी खोज को परिणाम में बदलने में सहायक होते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि हम धर्म से उसकी अंधविश्वासनीयता को त्याग कर तथा विज्ञान के समस्याजनक स्वरूप को विस्मृत कर दोनों के व्यावहारिक पक्षों को अवलोकित करें तो स्पष्ट होता है कि धर्म और विज्ञान की पारस्परिक सहकारिता सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है। वर्तमान में हम परिवर्तन के साथ सामाजिक संरचना व व्यवस्था का संगठनात्मक स्वरूप एवं भौतिक प्रगति का वैज्ञानिक स्वरूप देख रहे हैं वह इन दोनों की सहकारिता एवं समन्वयता का प्रतिफल है। भविष्य में भी सामाजिक प्रगति के लिए इनका उक्त स्वरूप अपरिहार्य व वांछनीय है। सामाजिक उन्नयन का ठोस आधार तभी विकसित किया जा सकता है जब धर्म और विज्ञान की दोनों धाराओं को साथ लेकर चलने का क्रम विकसित हो, इसके बाद ही सार्वभौम सामाजिक प्रगति का पथ प्रशस्त किया जाना संभव होगा। क्योंकि विश्व समाज में नैतिकता व भौतिकता सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति इनसे दोनों विचारधाराओं से ही संभव है।

संदर्भ

1. लेस्टर, वार्ड. (2018). ''प्योर सोशियोलॉजी कोटिड बाई''. मुकर्जी एवं अग्रवाल इन ''विकास एवं परिवर्तन का समाजशास्त्र. एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्सः आगरा. **पृष्ठ 18.**
2. हरनैल, हर्ट. (2018). ''प्योर सोशियोलॉजी कोटिड बाई''. मुकर्जी एवं अग्रवाल इन ''विकास एवं परिवर्तन का समाजशास्त्र. एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्सः आगरा. **पृष्ठ 18.**
3. लूमले. (2018). ''प्योर सोशियोलॉजी कोटिड बाई''. मुकर्जी एवं अग्रवाल इन ''विकास एवं परिवर्तन का समाजशास्त्र. एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्सः आगरा. **पृष्ठ 19.**
4. (2022). सम–सामयिक घटना चक्र, ''निबन्ध संग्रह''. एलनगंज. चर्च लेनः प्रयागराज. **पृष्ठ 165.**
5. किंग्सले, डेविस. (1967). ह्यूमन सोसाइटी. दी मैकमिलन कम्पनीः न्यूयार्क।
6. जेम्स, फ्रेजर. (1950). ''द गोल्डन बॉऊ''. द मैकमिलन कम्पनीः न्यूयार्क. **पृष्ठ 459.**